आश्रम व्यवस्था एवं ब्रह्मचर्य आश्रम

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

(क) आश्रमव्यवस्था की अवधारणा-

भारतीय संस्कृति के समुज्ज्वल तत्त्वों में एक सुन्दर तत्त्व है आश्रम व्यवस्था प्राचीन समाज को सुव्यवस्थित, सुगठित और सुसंस्कृत रूप प्रदान करने के लिए हमारे प्राचीन ऋषियों ने आश्रम चतुष्टय के सिद्धान्त की कल्पना की। हमारा समस्त शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास आश्रमधर्म पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी जाती थी और इस आयु के चार विभाग किए गए। प्रत्येक विभाग की वर्ष की मानी गई। ये चार विभाग ही 'आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हिन्दू सामाजिक संगठन के अन्तर्गत आश्रम व्यवस्था की परिकल्पना से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि मानव जीवन के प्रति भारतीय मनीषियों का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक एवं सर्वांगीण था। ऋषियों ने अत्यन्त विचारपूर्वक आश्रम व्यवस्था को प्रस्तुत किया था। जिस प्रकार वर्णचतुष्टय भारतीय संस्कृति की प्रमुख देन है उसी प्रकार आश्रम चतुष्टय भी भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख अंग है। वस्तुतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चार पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति के ही निमित्त जीवन को चार आश्रमों के रूप में विभक्त करने की व्यवस्था की गई थी। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ज्ञान, कर्म, त्याग और अध्यात्म की कुशलता को प्राप्त करके मोक्ष की ओर अग्रसर होना ही आश्रम व्यवस्था का चरम लक्ष्य था।

'आश्रम' शब्द 'आ' उपसर्गपूर्वक 'श्रम्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है, श्रम करना या प्रयास करना। इस प्रकार आश्रम वह व्यवस्था या सोपान है जिसमें मनुष्य पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए अथक परिश्रम करता है। परमपद की प्राप्ति में आश्रम विश्राम स्थल के रूप

E-Learning material prepared by Dr Dhananjay Vasudeo Dwivedi

में उपस्थित होते हैं। यह आश्रम व्यवस्था ही मनुष्य को सम्पूर्ण बनाकर उसे चरम लक्ष्य तक पहुँचाती थी। आश्रमव्यवस्था का उद्देश्य है-मनुष्य का सामाजिक नियमों में आबद्ध होकर अपनी आयु के अनुसार व्यक्तिगत उन्नति से सम्बद्ध कर्तव्यों का पालन करना।वस्तुतः प्रत्येक आश्रम की अपनी अलग स्थिति है, जिसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य एक स्थल पर रहकर कार्य करता है। यह कार्य और क्रिया ही उसका श्रम है, जो आश्रम से आबद्ध रहता है। अतः माध्यम के रूप में आश्रम मनुष्य को उद्देश्य प्राप्ति के निमित्त उत्प्रेरित करते हुए जीवन के विभिन्न कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के निर्वहण का अवसर प्रदान करता है।इस प्रकार आश्रमव्यवस्था मानव जीवन का क्रमबद्ध और तारतम्य जीवन दर्शन है, जिसके माध्यम से उसका विकास होता है। यदि चारों आश्रमों के प्रमुख कर्तव्यों पर दृष्टिपात किया जाए तो सहज ही समझ में आ सकता है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्ययनात्मक श्रम की अपेक्षा रहती है, गृहस्थाश्रम में रचनात्मक श्रम आवश्यक है, वानप्रस्थाश्रम में तपस्यात्मक श्रम किया जाता है और संन्यासाश्रम में योगसाधना रूप श्रम किया जाता है। वस्तुतः मनुष्यजीवन को पूर्ण रूप से व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए उसे चार आश्रमों में विभाजित किया गया था।

आश्रम व्यवस्था का गम्भीरता से अध्ययन करने पर यह तथ्य स्पष्टतः प्रकाश में आ जाता है कि उसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का एक अपूर्व समन्वय उपस्थित किया गया है।

आश्रम पद्धति में मानव जीवन को एक तीर्थयात्रा के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसमें मनुष्य अपनी जीवन यात्रा के तीन पड़ावों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ पर ठहर कर फिर संन्यास आश्रम में जीवन यात्रा के लक्ष्यभूत चरम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर सकें, इसीलिए आश्रमों में जो भी पुण्यजनक कार्य किए जाते हैं, वे सभी मोक्षधर्म की प्राप्ति में ही सहायक हैं। महाभारत में चारों आश्रमों को ब्रह्मप्राप्ति की चार सीढ़ियाँ कहा गया है।

चतुराश्रम व्यवस्था की योजना का यही कारण था कि मनुष्य जीवन में सतत सौख्य भी बना रहे और जीवन के समस्त प्रयोजन भी पूर्ण हो जाएं। इन चारों आश्रम रूपी पड़ावों में मनुष्य अपनी लोकयात्रा पूर्ण कर लेता था। यह आश्रम व्यवस्था ही मनुष्य को सम्पूर्ण बनाकर उसे मुक्ति रूपी चरम लक्ष्य तक पहुँचाती थी। संस्कृत के सभी साहित्यकारों ने भी इस व्यवस्था की उदात्तता को विभिन्न

E-Learning material prepared by Dr Dhananjay Vasudeo Dwivedi

रूपों में प्रस्तुत किया। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के रघुवंशीय नायकों की एक चरम विशेषता चतुराश्रम पालन थी-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।

ये चार आश्रम जीवन के चार विश्राम स्थल रूप हैं। मानवजीवन प्राप्त होने पर उसको व्यतीत तो सभी कर लेते हैं किन्तु आदर्श जीवन जी सकने के लिए आश्रम व्यवस्था एक निश्चित दिशा प्रदान करती है।

प्रत्येक आश्रम का अनुसरण व्यक्ति को क्रमपूर्वक करना चाहिए।ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास-यह क्रम ही अनुसरण योग्य है।दक्षस्मृति के अनुसार आश्रमों के क्रम को भंग करने वाला क्षणभर भी द्विज नहीं रहता, वह सर्वाश्रम वर्जित हो जाता है।

आश्रम व्यवस्था के सम्पूर्ण ऐतिहासिक क्रम के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवस्था के रूप में इसकी स्थापना उनिषत्काल में हुई और शीघ्र ही स्मृतिकाल तक आते आते यह अपने सर्वव्यापी रूप में स्थिर हो गई।

प्राचीन काल में भारत के शोभमान पवित्र तथा प्राकृतिक छटा से मण्डित वनस्थलियों में ही अधिकांश आश्रमों की स्थिति थी। आश्रम जीवन का श्रीगणेश ब्रह्मचर्य से होता था और वह पूर्णतः जंगल के आश्रमों से सम्बद्ध था। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने ब्रह्मचारी जंगल के एक-एक कण से परिचित हो जाता है। जंगल में स्थित चराचर से उसका भावात्मक लगाव हो जाता था।ब्रह्मचर्य के कठोर धर्मों का पालन वह ब्रह्मचारी विद्या में निष्णात होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। गृहस्थाश्रम का जीवन यद्यपि मुख्यतः ग्रामों से सम्बद्ध था, पर गृहस्थ का सम्पर्क जंगलों से टूटता नहीं था। शेष दो आश्रम वानप्रस्थ तथा संन्यास का भी सम्बन्ध जंगलों से बना रहता था।

(ख) ब्रह्मचर्य-व्युत्पत्ति एवं अर्थ, विशेषता, दिनचर्या, शिक्षा

ब्रह्मचर्य आश्रम मानव के सफल जीवन की आधारशिला है। ब्रह्मचर्याश्रम की अर्थाभिव्यक्ति ज्ञानप्राप्ति से है। इस आश्रम में रहते हुए ही व्यक्ति अपने भौतिक और आध्यात्मिक विकास का शुभारम्भ

कर पाता है। अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए इसे अमरत्वलाभ का उपाय कहा गया है। मानव-जीवन के षोडश संस्कारों में उपनयन, वेदारम्भ तथा समावर्तन ये तीन संस्कार इसी आश्रम के अन्तर्गत आते हैं। ब्रह्मचर्य शब्द् ब्रह्म उपदपूर्वक चर् धातु से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ आचरण करना। महाभारतकार वेदव्यास ने श्रेष्ठ आचरण करने वाले को 'ब्रह्मचारी' कहा है और उनके मत में ब्रह्मचारी वह है, जो गुरु की सेवा करता है, संयमित आचरण करता है, इन्द्रियों को वश में रखता है,केवल ब्रह्मज्ञान की इच्छा करता है-

ये गुरुन् पर्युपासन्ते नियता ब्रह्मचारिणः।

ब्रह्मचर्य का तात्पर्य इन्द्रिय संयमन और वेदाध्ययन करने के लिए व्रतपालन से है। ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य का प्रमुख अंग है। समस्त शारीरिक चेतनास्रोत का मुख्य आधार ब्रह्मचर्य है। जैसे मजबूत मकान के लिए उसकी नींव का पुख्ता होना आवश्यक है, वैसे ही एक स्वस्थ शरीर के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति निर्बल, निस्तेज, उत्साहहीन होता है। ब्रह्मचर्य से सम्पन्न व्यक्ति स्वस्थ, तेजस्वी, उत्साही एवं प्रतिभासम्पन्न होता है। ऐसा व्यक्ति समाज को दृढ बनाने में योगदान करता है। संयम को आधार बनाकर जीवन-यापन करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की शक्ति मनुष्य में दिव्य चारित्रिक चेतना को जन्म देती है। भारत में अतुलित बलशाली सन्त महात्माओं और वीर महापुरुषों का प्रादुर्भाव ब्रह्मचर्य के कारण ही हुआ है। आयु, तेज, बल, बुद्धि, वीर्य, पुण्य, कीर्ति और परमेश्वर में प्रीति ये सब गुण ब्रह्मचर्य का पालन करने से प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मविद्या अथवा ज्ञानरूपी ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए जिस काल में विद्यार्थी श्रेष्ठ आचरण करता है, वह ब्रह्मचर्य आश्रम है और विद्यार्थी ब्रह्मचारी। अतएव ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति का मुख्य उद्देश्य विद्याध्ययन है। इस आश्रम में पुस्तकीय ज्ञान का ही नहीं, व्यावहारिक ज्ञान का भी महत्त्व है,जो आगे चलकर अन्य आश्रमों के लिए उपयोगी है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरु का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्मचारी गुरु के पास रहता था और गुरुमुख से श्रवण के द्वारा ज्ञान ग्रहण करता था। अध्यापन के मौखिक होने के कारण गुरु का पद

E-Learning material prepared by Dr Dhananjay Vasudeo Dwivedi

स्वभावतः उच्च एवं महान् हो गया। इसीलिए भारतीय परम्परा में गुरु को भगवान् माना जाता है। मृदुल, जितेन्द्रिय, धैर्यशाली, सावधान तथा स्वाध्यायशील ब्रह्मचारी ही सफल होता है।

गुरु से शिष्य अपने आचार (कर्तव्य) सीखता है, इसीलिए गुरु आचार्य कहलाता है। गुरु की आज्ञापालन करना ब्रह्मचारी का परम कर्तव्य है। ब्रह्मचारी का यह धर्म है कि वह गुरु के नीचे के आसन पर बैठे। गुरु की निन्दा अथवा अपमान अथवा उपहास करने से ब्रह्मचारी को अगले जन्म में निकृष्ट पशुयोनि प्राप्त होती है। अतः ब्रह्मचारी को मन, वचन, कर्म से गुरु का हित करना चाहिए।

महाभारत के उद्योग पर्व में महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मचर्य के चार चरणों का कथन करके ब्रह्मचर्य आश्रम के धर्मों अथवा ब्रह्मचारी के कर्तव्यों का सुन्दर प्रतिपादन किया है। तदनुसार नित्यप्रति गुरु का अभिवादन करके, पवित्र, प्रमादरहित होकर शिष्य स्वाध्याय करे और अभिमान तथा क्रोध नहीं करे, यह ब्रह्मचर्य का प्रथम चरण है। शिष्य अपने कर्म, मन, वाणी, प्राण और धन से आचार्य का प्रिय करे और गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्र के प्रति भी गुरु के सदृश आचरण करे, यह ब्रह्मचर्य का द्वितीय चरण है। गुरु के प्रति शिष्य कृतज्ञ हो और प्रसन्नतापूर्वक अपनी उन्नति का कारण गुरु को ही समझे यह ब्रह्मचर्य का तृतीय चरण है। गुरुदक्षिणा दिए बिना आश्रम न त्यागे और दक्षिणा के सम्बन्ध में कभी कुछ न बोले-यह ब्रह्मचर्य का चतुर्थ चरण है।

हमारे आचार्यों ने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश हेतु उपनयन संस्कार की सुन्दर परिकल्पना की है, जिसका अभिप्राय है विद्यार्जन हेतु ब्रह्मचारी का गुरु के समीप जाना। उपनयन का सामान्य अर्थ समीप ले जाना है। उपनयन संस्कार को ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रवेशद्वार माना जाता है। ब्रह्मचारी बालक हाथों में समिधा व कुश लेकर श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर अत्यन्त विनीत भाव से विद्या की याचना करता था।

बालक को वेदाध्ययन के लिए गुरु के समीप ले जाया जाता था। आचार्यों ने यह बताया है कि गुरु उपनयन संस्कार के पश्चात् ऐसे शिष्य को पढ़ाए, जो अध्ययनशील, शास्त्रोक्त विधि से आचमन करने वाला, ब्रह्माञ्जलि बाँधने वाला, हल्के और सादे वस्त्र पहनने वाला और जितेन्द्रिय हो। वह उसे पवित्रता, आचार-व्यवहार, यज्ञ सम्बन्धी कार्य तथा सन्ध्योपासना की भी शिक्षा दे।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुकुल में प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारी को अधोलिखित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए-

(क) ब्रह्मचारी शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के बुलाते ही उसके समीप पढ़ने को जाए, विना कहे ही उसकी सेवा करे, उनके जागने से पहले जागे, उनके सोने के बाद सोए। वह मृदुल, जितेन्द्रिय, सावधान और स्वाध्यायशील बने। उसका यही आचरण उसे सफल कर सकता है।

(ख) अध्ययन के समय शिष्य का जीवन त्याग तथा तपोमय होना चाहिए। इस समय उसे आलस्य, निद्रा, तन्द्रा का परित्याग कर देना चाहिए और सुख की इच्छा नहीं करनी चाहिए क्योंकि तभी वह सावधान मन से वेदादि का अध्ययन तथा मनन कर सकता है-

सुखार्थी वा त्यजेद् विद्या विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतो सुखम्।।

(ग) प्राचीनकाल में भिक्षाटन भी गुरुकुल में रहने वाले ब्रह्मचारी का कर्तव्य था। इस नियम का उद्देश्य यह था कि ब्रह्मचारी नम्र बने, अन्य ब्रह्मचारियों से अपने को ऊँचा या नीचा न समझे, अपने लिए और आश्रम के लिए अर्थोपार्जन करे। इसीलिए ब्रह्मचारी का कर्तव्य निर्धारित किया गया कि भिक्षा में प्राप्त अन्न वह अपने गुरु को सौंप दे और उन्हीं से आज्ञा पाकर उसका उपभोग करे।

(घ) आध्यात्मिक रहस्य श्रवण करना, वेद विहित नियमों का पालन करना, होम करना, गुरुसेवा करना, स्वाध्यायशीलता और ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पालन करना-ये ब्रह्मचारी के आवश्यक कर्तव्य हैं-

रहस्यश्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम्।
अग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम्।।

(ङ) आचार्यों ने ब्रह्मचारी को सत्कर्मों की ओर ही प्रेरित किया है। उसे दुष्कर्मों से बचने का उपदेश दिया है। अध्ययन में बाधक तत्त्वों से दूर ही रहने का उपदेश दिया है। अध्ययन में बाधक तत्त्वों से दूर ही रहने का आदेश दिया है। भोगविलास उसके लिए त्याज्य माना है।

(च) ब्रह्मचारी को नित्य गायत्री का जप करना चाहिए। जो ब्रह्मचारी अर्थज्ञान पूर्वक नित्य गायत्री का जप करते हैं, वे परम गति को प्राप्त करते हैं। गायत्री लोक को पवित्र करने वाली हैं।

(छ) ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारी का परम धर्म संयम अर्थात् इन्द्रिय निग्रह है।

(ज) शारीरिक पवित्रता की दृष्टि से ब्रह्मचारी को नित्यप्रति स्नान करना चाहिए।

(झ) काम, क्रोध, विषयासक्ति, नृत्यसंगीत, द्यूतक्रीडा, परनिन्दा, असत्यभाषण, मद्यपान, स्त्री स्पर्श अथवा स्त्रीसंसर्ग आदि ब्रह्मचर्य आश्रम में पूर्णतया वर्जित थे। ब्रह्मचर्य का पालन न करने पर आयु, तेज, बल, वीर्य, प्रज्ञा, लक्ष्मी, कीर्ति, पुण्य, प्रीति सब कुछ नष्ट हो जाता है।

(ञ) ब्रह्मचारी को सायं एवं प्रातः ही भोजन करता होता था, बीच में भोजन करना निषिद्ध था।

इस समस्त प्रतिपादन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल में विद्याध्ययन, विशेषतः वेदाध्ययन का समय ब्रह्मचर्याश्रम नाम से अभिहित होता था। इस आश्रम के अपने कुछ नियम थे जिनका सम्पूर्णतः पालन करता करता हुआ ब्रह्मचारी ब्रह्मविद्या भी प्राप्त करता था तथा अपनी सेवा-परिचर्या और श्रद्धा से गुरु को सन्तुष्ट और प्रसन्न भी करता था। धर्मशास्त्रकारों ने इसीलिए यह कहा कि नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को मोक्ष प्राप्त हो जाता है, पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। ब्रह्मचर्य आश्रम की शिक्षा, संयम एवं अनुशासन से मनुष्य भावी जीवन के विस्तृत एवं जटिल पटल का निर्वाह करने की क्षमता धारण कर लेता था। समावर्तन संस्कार से ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति मानी जाती थी।

E-Learning material prepared by Dr Dhananjay Vasudeo Dwivedi